लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण एवं सुशासन

प्रस्तुतकर्त्री
डॉ. शीतल मीना
सहआचार्य, राजनीति विज्ञान,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

भारत ने भी स्वतंत्रता पश्चात् संसदीय युक्त संघीय ढांचे में लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया। यह शासन की एक अति विकसित प्रणाली थी जो ब्रिटेन और अमेरिका जैसे विकसित देशों के सम्मिश्रण को दर्शाती है। किंतु भारतीय समाज की संरचना इन देशों से विलग थी। इस समाज का हदय गांव में बसता है जहां देश की लगभग 34 प्रतिषत आबादी निवास करती है (2017 विश्व बैंक के सर्वे के अनुसार) ऐसे में लोकतंत्र को लोक से जोड़ने के लिए उसे तृणमूल स्तर से आरंभ करना अनिवार्य हो जाता है। इसी की परिकल्पना पंचायती राज व्यवस्था के रूप में सामने आती है, जिसे सैद्धांतिक शब्दावली में 'लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण' भी कहते हैं। विकेंद्रीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें शक्ति–सत्ता, संसाधनों एवं निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को इस प्रकार संचालित किया जाता है कि व्यक्तियों की सहभागिता सबसे निचले स्तर तक सुनिश्चित की जा सके। उपरोक्त संदर्भ में ही यदि हम लोकतंत्र की सुदृढ़ता की बात करें तो यह तभी सुदृढ़ होता है जबकि शासन और उसकी प्रक्रिया में सभी का समावेशन हो। निर्णय ऊपर से लोगों पर थोपे न जाएं बल्कि नागरिकों को उनमें सहभागी बनाया जाए पंचायती राज व्यवस्था इसी संकल्पना को पूर्ण करने का सर्वाधिक कारगर साधन है और यही सुषासन की आवष्यक षर्त भी है।

बीज अक्षर– लोकतांत्रिक व्यवस्था, हदय गांव में बसता है, विकेंद्रीकरण, समावेशन, सुषासन, आदि।

पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण भारत की स्थानीय स्वशासन प्रणाली है। स्वरूप चाहे जो हो, लेकिन मुगल काल को छोड़, हर युग में शासन की यह प्रणाली वहां जीवित रही है। वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली में स्थानीय निकाय व शासन को महत्वपूर्ण आधार माना गया है। अथर्ववेद में राष्ट्र की व्याख्या है। जैन ग्रंथों में लोकतंत्र शब्द का उल्लेख मिलता है। वैदिक काल में स्थानीय स्वशासन वर्तमान की भांति नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में विभाजित था। रामायण व महाभारत कालीन साहित्य में भी सभा, समिति तथा गांवों का उल्लेख है। मनुस्मृति के अनुसार गांव का अधिकारी प्रमिक कहलाता था, जिसका कार्य कर–संचालन था।

मौर्य कालीन प्रमाणिक साहित्य में भी ग्राम स्वराज की चर्चा है। गुप्तकाल में नगर के अधिकारी को नगरपति एवं ग्राम के अधिकारी को प्रमिक कहा जाता था। राजपूत युग में भी प्रशासन की मूल इकाई ग्राम ही था। सल्तनत काल में शासन का स्वरूप भारतीय नहीं रहा। तब राजा के द्वार नियुक्त सैन्य अधिकारी प्रशासन की जिम्मेवारी संभालने लगे। मुगलकालीन भारत में प्रशासन की जिम्मेवारी के लिए नगर कोतवाल की नियुक्ति होती थी। कोतवाल मुस्लिम धार्मिक नेताओं से राय जरूर लेता था, लेकिन वह राजा के प्रति उत्तरदायी होता था, न कि प्रजा के प्रति। ।

भारत में आधुनिक स्थानीय स्वशासन का जनक ब्रिटिश अधिकारी लॉर्ड रिपन को माना जाता है। वर्ष 1882 में उन्होंने स्थानीय स्वशासन संबंधी प्रस्ताव दिया। साल 1919 के भारत शासन अधिनियम के तहत प्रांतों में दोहरे शासनकी व्यवस्था की गयी तथा स्थानीय स्वशासन को हस्तांतरित विषयों की सूची में रखा गया। स्वतंत्रता के पष्चात 1957 में योजना आयोग (अब नीति आयोग द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) और राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम (1953) के अध्ययन के लिए

बलवंतराय मेहता समिति का गठन किया गया। इस समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती राजव्यवस्था–ग्राम स्तर, मध्यवर्ती स्तर एवं जिला स्तर पर लागू करने का सुझाव दिया। इसकी सिफारिशों के अनुसार ये अक्तूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा देश की पहली त्रिस्तरीय पंचायत का गठन किया था। वर्ष 1993 में 73 व 74 वें संविधान संशोधन के माध्यम से भारत में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक अधिकार प्रयास किया गया। यह भारत में पंचायती राज व्यवस्था लागू करने दिशा में एक बड़ा कदम था। इस संशोधन अधिनियम के द्वारा संविधान में एक नवीन भाग (भाग नौ) जोड़ा गया है, जो पंचायतों के विषय में है।

भारत का भूगोल इसे एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था के अनुकूल वातावरण प्रदान करता है। इसीलिए प्राचीनकाल से ही कृषि एवं उससे जुड़ी गतिविधियां यहां की । अर्थव्यवस्था की रीढ़ रही है। जैसे वैदिक सभ्यता मुख्यतः एक कृषिगत तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी। 1200 ई. पूर्व ऋग्वेद में ग्राम सभा (टपजंहम चंदबींलंज) एवं ग्रामीन्स (ळतंउपद) अर्थात गांव का वयोवृद्ध व्यक्ति) का उल्लेख मिलता है। जो गांव की गतिविधियों के संचालन और न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन करते थे। धीरे–धीरे इन ग्रामीण संस्थाओ ने पंचायतों का रूप धारण कर लिया जिनमे पांच सदस्य होते थे। जिन्हें पंच परमेश्वर कहा गया क्योंकि इनके पुलिस और न्यायिक अधिकारों का सभी व्यक्ति अनन्य भाव से पालन करते थे। इनके अलावा प्रत्येक जातियों की अपनी–अपनी पंचायतें भी प्राचीन उत्तरी भारत में देखने को मिलती हैं जो अपने विशेष सामाजिक रीति रिवाजों एवं ढांचे से संचालित होती थी। गुप्त काल से मध्यकालीन भारत एवं मुगलकाल में भी ग्राम पंचायतें लगभग इन्हीं रूपों में कार्यरत रहीं, किंतु मुगल शासको ने पंचायतों की न्यायिक शक्तियों को रणनीति केतहत धीरे–धीरे कम करना शुरू कर दिया । क्योंकि उनका उद्देश्य साम्राज्य विस्तार था न कि सत्ता का विकेंद्रीकरण।

स्वतन्त्रत भारत एवं लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण

स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रक्रिया में भारतीय संविधान निर्माताओं के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि वे आगे आने वाली पीढ़ियों को किस प्रकार की शासन व्यवस्था प्रदान करते हैं। जब भारत स्वतंत्र हुआ तो केवल भारत स्वतंत्र नहीं हुआ बल्कि दो टुकड़ों में आजादी मिली। विखण्डन की प्रक्रिया ने देश की आत्मा और अखंडता कभी न भुलाए जाने वाला आघात किया। अतः स्वतंत्र भारत को एक ऐसी शासन व्यवस्था की आवश्यकता थी जिसमें लोकतांत्रिक मूल्य एवं वैयक्तिक स्वतंत्रता तो हो लेकिन देश की अखंडता के साथ कोई समझौता न हो। इसीलिए डा. आबेडकर सत्ता के बहुत ज्यादा विकेंद्रीकरण के पक्ष में नहीं थे वहीं नेहरू ने भी विकद्रीकृत व्यवस्था को यह कहकर रद्द किया कि गांव में अंधविश्वास और अज्ञानता का वास होता है। दूसरी ओर गांधी जी गांव के गणराज्य के सपने में गहरी आस्था रखते हुए ग्रामीण अर्थव्यवस्था के समर्थन में थे। उनके अनुसार भारत का उदय गांव है इसीलिए शासन की प्राथमिक इकाई उन्हें ही माना जाए। साथ ही संसदीय व्यवस्थाको वह सबसे हीनव भष्ट प्रणाली के रूप में इंगित करते हैं। हालाकि नेहरू और डा.आंबेडकर का भी मानना था कि सत्ताका विकेंद्रीकरणही किंतु फिलहाल इसे भविष्य के भारत पर छोड़ दिया जाए तो बेहतर होगा। इसीलिए अनुच्छेद 40 में कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों के गठन के लिए कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियां व प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाए।

विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया का आरंभ

पहले आम चुनाव के पश्चात ही विकेंद्रीकरण का प्रयास हुआ जब 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम को शांति निकेतन,बरोदा व निलाखेरी से आरंभ किया गया। किंतु जनचेतना के प्रसार के अभाव एवं सरकारी इच्छा शक्ति की कमी के कारण यह सफल नहीं हो सका साथ ही कमजोर –ढांचागत संरचना ने इसकी विफलता को और अधिक बढ़ा दिया। जनवरी 1957 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा के मूल्यांकन के लिए बलवंत राय मेहता की

अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। मेहता समिति ने स्वशासन के संस्थागत ढांचे एवं कार्यशैली का अध्ययन कर 1957 के अंत में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। उपरोक्त समिति ने भारत में पंचायती राज व्यवस्था अथवा 'लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण' पर अनुशंसा प्रदान की। समिति ने कहा कि विकास तंत्र विकेंद्रीकृत हो तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शक्तियों को विस्तारित किया जाए। साथ ही प्रशासन तंत्र के विकेंद्रीकरण को आधार बनाकर विकास एवं शासन की नींव डाली जाए। इसके अलावा गांव, ब्लाक तथा जिला स्तर पर नियोजन एवं विकासात्मक गतिविधियों को निर्वाचित निकायों के साथ गहराई प्रदान की जाए। बलवंत राय समिति की महत्वपूर्ण अनुशंसाओं पर थोड़ा ठहर कर विचार करना होगा क्योंकि बलवंत राय को स्वतंत्र भारत में पंचायती राज व्यवस्था के निर्माता के रूप में माना जाता है। इस समिति की महत्वपूर्ण अनुशंसा इस प्रकार है

1. स्वशासन को तीन स्तरीय ढांचे में इस प्रकार पिरोया जाए जिसमें गांव को प्राथमिक तथा जिले को सर्वोच्च तथा मध्य स्तर पर मंडल को पंचायती राज व्यवस्था की एकीकृत प्रणाली के रूप में विकसित कियाजासके।
2. इनकी सब साथी इकाइयों को वास्तविक तौर पर शक्ति तथा उत्तरदायित्व का हस्तांतरण हो।
3. इकाइयों को पर्याप्त संसाधन मिले ताकि वे अपने दायित्वों का निर्वहन अबाध रूप से कर सके।
4. सामाजिक एवं आर्थिक विकास के सभी कार्यक्रमों को नियोजित तरीके से संस्थागत रूप प्रदान किया जाए।
5. संपूर्ण पंचायती राज व्यवस्था को इस प्रकार संचालित किया जाए जिससे कि शक्तियों का विस्तार, उत्तरदायित्व का निर्वहन एवं संसाधनों का बंटवारा तृणमूल स्तर पर संभव हो सके।

बलवंत राय मेहता कमेटी की उपरोक्त अनुशंसाएं 1958 में राष्ट्रीय विकास समिति द्वारा स्वीकार कर ली गई एवं संपूर्ण भारत में पंचायती राज व्यवस्था के नव निर्माण का कार्य आरंभ किया गया। 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले से प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भारत में प्रथम पंचायत की स्थापना की उद्घोषणा की तत्पश्चात कई राज्यों में पंचायतों की स्थापना का निर्माण कार्य आरंभ हुआ। ज्यादातर राज्यों ने पंचायतों के उसी तीन स्तरीय ढांचे को अनुमोदित किया जिसे बलवंत राय मेहता समिति ने अनुशंसित किया था। कुछ राज्यों ने अपनी–अपनी परिस्थितियों के अनुसार कुछ फेरबदल कर के पंचायतों के सपने को पूर्ण किया। किंतु अभी भी पंचायतें अपनी सर्वोत्तम क्षमताओं के साथ कार्यरत नहीं हो पा रही थी जिसके लिए समय–समय पर कई समितियों का गठन किया गया जैसे अशोक मेहता समिति 1978, एलम सिंघवी समिति, 1986 संथानम समिति इत्यादि। तत्पश्चात संविधान में 64वें संशोधन को प्रस्तुत किया गया किंतु राजीव गांधी सरकार इसे दोनों सदनों में पास कराने में विफल रही। इस प्रकार अभी तक पंचायतों को संविधानिक पहचान मिल पानी बाकी था। इसी कड़ी में 1992 में संविधान में 73वांसंविधान संशोधन किया 5 गया जिसने पंचायती राज व्यवस्था को भारत में संविधानिक जामा पहनाया। 73 वां संविधान संशोधन मुख्य रूप से बलवंत राय मेहता कमेटी की अनुशंसाओं पर ही आधारित था। इसमें पंचायती निकायों के नियमित अंतराल पर चुनाव के प्रविधान किए गए। जिसके लिए एक राज्य निर्वाचन आयोग का गठन किया गया। पंचायतों की वित्तीय हालत को मद्देनजर रखते हुए राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया जो कि राज्य सरकार एवं पंचायतों के मध्य धन का संस्थागत बंटवारा करने के लिए अधिकृत था। साथ ही समाज के वंचित वर्गों के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण का प्रविधान किया गया। यह आरक्षण स्थानीय निकायों के प्रत्येक स्तर पर प्रदान किया गया। कोई भी सभ्य समाज जब तक समावेशी नहीं बनता जब तक कि वह महिलाओं को उन के संपूर्ण अधिकार न दें इसी को ध्यान में रखते हुए पंचायतों के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं को एक यही नहीं कुछ राज्यों ने तो महिला आरक्षण 50 प्रतिषत तक भी दिया है। 73 वे संविधान

संशोधन ने पंचायती राज व्यवस्था को वह आधार प्रदान किया जिससे उनके संस्थागत रूप को संविधानिक स्वरूप प्राप्त हो गया। यह अधिनियम प्रभावी ढ़ंग से सभी मुद्दों को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है।

समालोचना

पंचाती राजव्यवस्था को संविधान सम्मत अधिकार आज भी प्राप्त नहीं हो पाया है। इसके लिए दोषी कौन है, इस पर विद्वानों के अलग–अलग मत है, लेकिन इस मामले में कहीं न कहीं केन्द्रीय शासन के आत्मबल की कमी परिलक्षित होती है। पंचायती संस्थाओं के अधिकारों का हस्तांतरण नहीं हो पाया है। केंद्र या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी या कर्मचारी ही चयनित प्रतिनिधियों की शक्ति का प्रयोग करते हैं। विकास कार्यों में भी इन अधिकारियों का व्यापक हस्तक्षेप होता है। पंचायती राज संस्थाओं के निवाचित प्रतिनिधियों के पास अधिकारियों या कर्मचारियों पर नियंत्रण रखने की शक्ति का विधान होना चाहिए था, जो वर्तमान व्यवस्था में नहीं है।

दूसरी बात, चयनित प्रतिनिधियों के सतत प्रशिक्षण की भी व्यवस्था मुकम्मल और पर नहीं है। इसके अंतर्गत ग्राम सभा में सभी बालिग ग्रामीण सदस्य होते हैं। सारे प्रस्तावों को उस सभा से पारित कराना होता है लेकिन प्रशिक्षण एवं प्रचार के अभाव में ग्राम सभा की ताकत का प्रचार नहीं हो पाया है, जिसका फायदा शासन के द्वारा नियुक्त अधिकारी व कर्मचारी उठाते हैं। ग्राम सभा की आठ उप समितियां होती है. ग्राम विकास समिति, सार्वजनिक संपदा समिति, कृषि समिति, स्वास्थय समिति, ग्राम सुरक्षा समिति, आधारभूत संरचना समिति, शिक्षा व सामाजिक न्याय समिति तथा निगरानी समिति। लेकिन पंचायतों में इन समितियों का कोई महत्व नहीं होता है।झारखंड जैसे आदिवासी बाहुल्य राज्यों में पंचायती राज के साथ एक और समस्या है। वर्ष 1996 में पंचायत उपबंधा (अनुसूचित क्षेत्रों का विस्तार) विधेयक यानी पेसा कानून पास हो गया, लेकिन इसे लागू नहीं किया गया है। पेसा कानून का मूल उद्वेष्य यह था कि केंद्रीय कानून में जनजातियों की स्वायत्तता के बिंदु स्पष्ट कर दिये जाएं, जिनके उल्लंघन की शक्ति राज्यों के पास न हो। वर्तमान में 10 राज्यों (आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, झारखंड, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा और राजस्थान) में यह अधिनियम लागू होता है, लेकिन इसे पूर्ण रूप से लागू ही नहीं किया गया है। राज्य सरकारें अपने अधिकार में कोई हस्तक्षेप नहीं चाहती हैं। यही कारण है कि ऐसे कानून बनने के बाद भी पंचायत को शक्ति उपलब्ध नहीं हो पायी है। लोकतंत्र का अर्थ होता है शासन व सत्ता का विकेंद्रीकरण। पंचायती शासन प्रणाली उसका सबसे बढ़िया स्वरूप है। यदि लोकत्र को मजबूत करना है और शासन में सबकी भागीदारी सुनिश्चित करनी है, जो पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी बनाना होगा। अषोक भगत, पंचायती राज संस्थाओं की मजबूती, स्टार समाचार, सतना, 13 मई 2022 पृ. 6

तीसरी बात, समाजका पितृसत्तात्मक ढांचा महिला प्रतिनिधित्व को पूर्ण रूप से स्वीकार करने में असमर्थ था। पति प्रधान जैसी संकल्पना पंचायतों में देखने को मिली। जितने निर्वाचित महिला की बजाय पंचायतों की बैठकों में उनके पति अथवा घर के पुरुष हिस्सा लेने जाने लगे। प्रकार गांव में जातीय जड़ता ने अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के प्रतिनिधित्व को गहरा झटका दिया। वहीं राज्य सरकारों द्वारा पंचायतों को पर्याप्त शक्तियों एवं धन का वितरण न करना भी पंचायतों की स्थिति को कमजोर कर रहा है। अन्य चुनाव की भांति आज पंचायतों के चुनाव में दलगत राजनीति की चपेट में आ चुके हैं तथा नौकरशाही एवं प्रशासनिक नियंत्रण ने पंचायतों की स्वायत्तता को गहराई से प्रभावित किया है। आज भारत में लगभग 630 जिला पंचायतें तथा 6614 ब्लाक पंचायतें तथा 253000 से अधिक ग्राम पंचायतें अस्तित्व में है। संपूर्ण भारत को अगर लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के पैमाने पर समझा जाए तो भारत में जहां एक और 5000 के आसपास सांसद और विधायक हैं वही लगभग 2800000 से अधिक ग्रामीण प्रतिनिधि भी है जिनमें लगभग 12 लाख के आसपास महिलाएं एवं नौ लाख के

करीब अनुसुचित जाति एवं जनजातियों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व भी शामिल है। इस प्रकार पंचायती राज व्यवस्था ने लोकतंत्र के वास्तविक सपने को साकार किया है, शासन की पंक्ति खड़ा हुआ अंतिम व्यक्ति भी यह महसूस कर सके कि वह भी सत्ता–सरकार एवं शासन की प्रक्रिया एवं निर्णय निर्माण प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा है।

सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में क्रांतिकारी बदलावों की संभावनाएं पंचायती राज के साथ जुड़ी हैं। आज 73वां संविधान संशोधन अधिनियम लागू होने का 30वां साल भी शुरू हो रहा है। यह अधिनियम 1992 में पास हुआ था और 24 अप्रैल 1993 को लागू हुआ था। इस दिन को राष्ट्रीय पंचायतीराज दिवस के रूप में मनाने की शुरुआत 2010 से हुई थी। जनवरी 219 तक की जानकारी के अनुसार देश में 80 जिला पंचायते, 6614 ब्लॉक पंचयतें और 253,163 ग्राम पंचायतें हैं। इनमें 30 लाख से अधिक पंचायत प्रतिनिधि हैं। सबसे निचले स्तर पर पंचायत–व्यवस्था में लगभग प्रत्यक्ष लोकतंत्र है। यानी कि अपनी समस्याओं के समाधान में जनता की सीधी भागीदारी। यह व्यवस्था जितनी पुष्ट होती जाएगी, उतना ही ताकतवर हमारा लोकतंत्र बनेगा। विश्व में अद्भुत आज दुनिया के विकसित देश औपचारिक रूप से यह मानने को विवश हैं कि भारत जैसे विशाल और विविधता वाले देश में पंचायती राज के माध्यम से सत्ता को नीचे तक पहुंचाने का काम अद्भुत है। विश्व में सबसे ज्यादा शोध यदि किसी प्रणाली पर हुआ है तो वह है, भारत की पंचायती राजव्यवस्था। इस आधार पर स्वाभाविक निष्कर्ष यही निकलेगा कि अगर विश्व में इस व्यवस्था ने धाक जमाई है तो निश्चित रूप से सफल है। जाति और लिंग के आधार पर सत्ता में भागीदारी की दृष्टि से विचार करें तो इसने समानता के सिद्धांत को साकार किया है। 1992 के संशोधन में महिलाओं के लिए 33 प्रतिषत आरक्षण था जिसे बाद में 50 प्रतिषत कर दिया गया। यानी इस समय करीब 2.6 लाख ग्राम पंचायतों में आरक्षण के अनुसार सत्ता की आधी बागडोर महिलाओं के हाथों में है।

दूसरे दलितों, आदिवासियों, पिछड़ी जातियों एवं अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों की संख्या 80 प्रतिषत से ज्यादा है। विधानसभाओं एवं लोकसभा में अनुसूचित जाति –जनजाति एवं अति पिछड़ी जातियों के सांसदों और विधायकों के निर्वाचित होने से जमीनी स्तर पर सामाजिक असमानता में अपेक्षित अंतर नहीं आया। पंचायतों में इनके निर्वाचन से व्यापक अंतर आया है। एक समय स्वयं को उपेक्षित माने जाने वाला वर्ग अब गांवों और मोहल्ले में फैसले करता है तथा ऊंची जाति की मानसिकता में जीने वाले ने इसे स्वीकार कर समन्वय स्थापित किया है। ये सब प्रयास तब तक कारगर नहीं होंगे जब तक जवाबदेही, मॉनिटरिंग एवं ऑडिट का प्रावधान न किया जाए। इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा पारदर्शिता का अभाव, जागरूकता की कमी, लालफीताशाही, कमजोर सूचना तंत्र एवं सामाजिक मूल्यों में गिरावट का समय आ गया है कि पंचायती राज संस्थाओं के 30 वर्ष का निष्पक्ष मूल्यांकन कर पिछले दरवाजे से शासन चलाने, कार्यपालिका द्वारा अधिक अधिकार, विश्वसनीयऑडिटिंग, दंडकारी भ्रष्टाचार विरोधी उपायों, योजना एवं खर्च का व्यापक प्रचार, राजनीतिक जागरूकता, तय समय में चुनाव आदि के सुधार का समय है।

सन्दर्भ

1. आशा कौशिक, फ**नारी सशक्तिकरण : विमर्श एवं यथार्थ**य पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2004, पृ. सं. 257.

2. शक्ति विशेषांक, अप्रैल 2003 से मार्च 2005 जयपुर, पृ. सं. 4.

3. रिषभदेव शर्मा, **स्त्राी सशक्तिकरण के विविध आयाम** गीता प्रकाशन, हैदराबाद, 2004, पृ. सं. 32

4. एम.एन. अंसारी, **महिला और मानवाधिकार** ज्योति प्रकाशन, जयपुर 2000, पृ. सं. 367.

5. ललित कुमावत, **पंचायती राज एवं वंचित महिला समूह का उभरता नेतृत्व** क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2004 पृ. सं. 30.

6. कुरूक्षेत्र, **फराजनीतिक सहभागिता एवं महिला सशक्तिकरणय** मार्च 2007 पृ. सं. 26.

7. क्रानिकल, **भारत की सामाजिक समस्याएँ** प्राईमा प्रिन्टर्स, दिल्ली 2005 पृ. सं. 297–398.

8. पी.पी. गौर, आर.के. मराठा, **फ्लोकतांत्रिाक विकेन्द्रीकरण और ग्रामीण विकासय** आदित्य पब्लिशर्स, बीना ;म.प्र.द्ध 2001, पृ. सं. 8.

9. शमता सेठ, फ्पंचायती राजय हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, नई दिल्ली, 2002, पृ. सं. 31.

10. नोट–5 पृ. 27.